

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 8 अध्याय 7: भगवान शिव का विषपान

14 September 2026



जब मथते सागर से ऐसा विष उठता है जो तीनों लोकों को जला सकता है, तब एक ही आकृति आगे बढ़ती है — किसी रत्न को हथियाने नहीं, अपितु उस संकट को पी जाने। भगवान शिव उस विष को अपने कण्ठ में धारण कर लेते हैं, और वह सदा के लिए नीला हो जाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विज्ञम में आपका पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। मन्दराचल के तट पर लाए जाने और वासुकि के रस्सी रूप में आ जाने पर अब क्षीरसागर का महान मन्थन वास्तव में आरम्भ होता है — और आठवें स्कन्ध का यह सातवाँ अध्याय हमें पर्वत के पहले घुमाव से लेकर उस क्षण तक ले जाता है जब दिव्य करुणा की सबसे कठिन परीक्षा होती है।

अध्याय की जानकारी

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 8 (आठवाँ स्कन्ध)

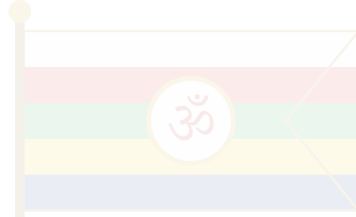
- अध्याय: 7 (सप्तम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: मन्थन का आरम्भ और भगवान शिव का विषपान
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित से कहते हुए — भगवान शिव की स्तुति तथा शिव के सती से वचन सहित
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: क्षीरसागर का तट; कैलास पर्वत
- केन्द्रीय विषय: क्षीरसागर का मन्थन आरम्भ होता है; भगवान कच्छप रूप में पर्वत धारण करते हैं; हलाहल विष उठता है; भगवान शिव समस्त प्राणियों की रक्षा हेतु उसे पी जाते हैं
- प्रमुख श्लोक श्रेणी: स्कन्ध 8, अध्याय 7, श्लोक 1–46
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

षष्ठ अध्याय में भगवान देवताओं के समक्ष प्रकट हुए, मन्दराचल और वासुकि से क्षीरसागर मथने की योजना बताई, असुरों से सन्धि का परामर्श दिया, और गिरे पर्वत को गरुड़ पर सागर तक ले गए। हर तैयारी पूर्ण थी। यह अध्याय मन्थन को ही उठाता है — और उस संकट को जो तत्काल आता है जब सागर अपना पहला और सबसे भयंकर उपहार देता है।

मन्थन आरम्भ होता है — और पूँछ का प्रश्न

श्रीशुकदेव राजा परीक्षित से कहते हैं कि वासुकि को अमृत में उसके भाग का आश्वासन देकर देवताओं और असुरों ने नागराज को मन्दराचल के चारों ओर लपेटा और बड़े आनन्द से मथना आरम्भ किया। भगवान ने पहले सर्प को उसके मुख के निकट पकड़ा, और देवता उसी ओर खड़े हुए। परन्तु दैत्य-सेनापति असन्तुष्ट हुए। अपने ज्ञान और कुलीन जन्म पर गर्व करते हुए उन्होंने पूँछ — सर्प के अशुभ भाग — को पकड़ने से इनकार कर दिया। उन्हें मौन खड़े देखकर भगवान मुस्कुराए, मुख को छोड़ा, और देवताओं के साथ स्वयं पूँछ पकड़ ली। इस प्रकार स्थान निश्चित होने पर देवता और असुर पूरे बल से सागर मथने लगे।





सर्पराज वासुकि मन्दराचल पर लपेटा जाता है, और देवता तथा असुर क्षीरसागर मथना आरम्भ करते हैं; जब असुर पूँछ का भाग अस्वीकार करते हैं, तब भगवान मुस्कराते हुए देवताओं सहित उसे ग्रहण करते हैं (श्लोक 1-5)।

नागराज वासुकि मन्दराचल के चारों ओर लिपटा है, और देवता-असुर क्षीरसागर मथने लगते हैं; जब असुर पूँछ पकड़ने से इनकार करते हैं, तब भगवान मुस्कराते हुए उसे देवताओं के साथ पकड़ लेते हैं (श्लोक 1-5)।

भगवान कच्छप रूप में पर्वत धारण करते हैं

तत्काल एक कठिनाई आई: वह विशाल पर्वत, जिसके नीचे कोई आधार न था, अपने भार से सागर में डूब गया, यद्यपि उसे बलवान देवता और असुर थामे हुए थे। उनका प्रयास विफल होने पर सब हतोत्साह हो गए। तब अटल संकल्प वाले भगवान ने एक अद्भुत और विशाल रूप धारण किया — दिव्य कच्छप — जल में प्रवेश किया, और पर्वत को अपनी पीठ पर उठा लिया।

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ।
कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत् प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार

अर्थ: आए हुए विघ्न को देखकर अपार पराक्रम और अटल संकल्प वाले भगवान ने एक अद्भुत, विशाल कच्छप रूप धारण किया, जल में प्रवेश किया, और पर्वत को उठा लिया। (स्कन्ध 8, अध्याय 7, श्लोक 8)

वह कच्छप इतना विशाल था — उनकी पीठ किसी विशाल द्वीप के समान एक लाख योजन तक फैली हुई — कि उस पर टिका पर्वत मानो केवल एक खुजली-सा प्रतीत हुआ। भगवान की सहायता यहीं समाप्त न हुई। उन्होंने असुरों में अपनी रजोमयी शक्ति से, देवताओं में अपनी सत्त्वमयी शक्ति से, और थके हुए वासुकि में तमोमयी शक्ति से प्रवेश करके तीनों को नया बल दिया, जिससे यह महान कार्य असफल न हो;

और सहस्रबाहु रूप धारण करके शिखर पर खड़े होकर पर्वत को दबाए रखा जिससे वह उछल न पड़े, जबकि ब्रह्मा, शिव और इन्द्र उनकी स्तुति करते और आकाश से पुष्प बरसाते रहे।



जब पर्वत डूबने लगता है, भगवान विशाल दिव्य कच्छप का रूप धारण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण करते हैं, जिससे मन्थन चलता रहे (श्लोक 6-13)।

जब पर्वत डूबने लगता है, भगवान विशाल दिव्य कच्छप का रूप धारण करके मन्दराचल को अपनी पीठ पर उठा लेते हैं, जिससे मन्थन चलता रहे (श्लोक 6-13)।

हलाहल विष उठता है

जैसे-जैसे मन्थन प्रचण्ड होता गया, गहराई के मत्स्यों और जलजन्तुओं को विक्षुब्ध करते हुए, सागर ने अपना पहला उपहार दिया — पर वह अमृत नहीं था। मथते जल से एक अत्यन्त घोर विष उठा जिसका नाम हलाहल था।

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं

महोल्बणं हालहलाहमग्रतः ।

सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्

तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १८ ॥

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाहमग्रतः सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात् तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात्

अर्थ: मथे जाते सागर से — जिसके मत्स्य, मकर, सर्प और कच्छप विक्षुब्ध हो उठे — सर्वप्रथम एक अत्यन्त भयंकर विष उठा जिसका नाम हलाहल था। (स्कन्ध 8, अध्याय 7, श्लोक 18)

उस विष को असह्य रूप से हर दिशा में, ऊपर-नीचे फैलते देखकर, और कहीं शरण न पाकर, समस्त प्राणी और उनके नायक भयभीत होकर परम मंगलमय भगवान सदाशिव की शरण में भागे, जो कैलास पर्वत पर अपनी सहचरी सहित तीनों लोकों के कल्याण हेतु तपस्या में लीन थे। स्तुतियों से उनका अभिनन्दन करते हुए प्रजापतियों ने उनसे प्रार्थना की, उन्हें उस एक भगवान के रूप में स्तुत करते हुए जो समस्त जगत को बाँधने और मुक्त करने में समर्थ हैं — उन्हें वेद के स्रोत, विश्व के स्वरूप, जिनके तीन गुण उनके तीन नेत्र हैं, जिनकी परम अवस्था स्वयं परब्रह्म है, कहते हुए।

यह विचारणीय है कि भगवान — जिन्होंने अभी-अभी पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया था और मन्थन के हर कार्यकर्ता को बल दिया था — ने यह विष स्वयं क्यों नहीं हटाया, जबकि वे ऐसा करने में पूर्ण समर्थ थे। कहा जाता है कि वे इसलिए पीछे रहे जिससे तीनों लोकों की रक्षा का श्रेय भगवान शिव को मिले, जो उनके अपने भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं; भगवान को अपने भक्त को मिलने वाले सम्मान में उतना ही आनन्द मिलता है जितना स्वयं कर्म का श्रेय लेने में नहीं। यही भाव श्रीशुकदेव इसी अध्याय में आगे प्रकट करते हैं — सच्चा भक्त दूसरों का दुःख देख नहीं सकता, और उनकी पीड़ा को प्रसन्नता से अपना बना लेता है। मन्थन-सागर पर हुई यह रक्षा इसलिए केवल शिव की करुणा नहीं, अपितु भगवान की अपनी करुणा भी है, जो स्वयं पीछे हटकर अपने भक्त को चमकने देने में प्रकट हुई (श्लोक 19)।



मथते समुद्र से सबसे पहले भयंकर हलाहल विष उठता है, जो चारों दिशाओं में फैल जाता है; भयभीत होकर समस्त प्राणी रक्षा हेतु भगवान शिव की शरण में जाते हैं (श्लोक 18-20)।

मथते सागर से पहला जो उठता है वह घोर हलाहल विष है, जो हर दिशा में फैलता है; भयभीत होकर समस्त प्राणी रक्षा हेतु भगवान शिव की शरण में जाते हैं (श्लोक 18-20)।

भगवान शिव की करुणा

उनकी व्यथा से हृदय की गहराई तक द्रवित होकर भगवान शिव — समस्त प्राणियों के मित्र — अपनी प्रिय सहचरी सती की ओर मुड़कर बोले।

श्रीशिव उवाच

अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम् ।

क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥

श्रीशिव उवाच अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम् क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकूटादुपस्थितम्

अर्थ: भगवान शिव ने कहा — हाय, हे भवानी, इन प्राणियों पर आई इस विपत्ति को देखो, जो क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न कालकूट विष से आई है। (स्कन्ध 8, अध्याय 7, श्लोक 37)

इन भयभीत प्राणियों को वह सुरक्षा देना मेरा कर्तव्य है जो वे चाहते हैं; पीड़ितों की रक्षा करना ही समर्थ का दायित्व है, उन्होंने कहा। सज्जन अपने क्षणभंगुर जीवन को त्यागकर भी अन्य प्राणियों की रक्षा करते हैं। श्रीहरि, विश्व की आत्मा, उससे प्रसन्न होते हैं जो भ्रमित प्राणियों पर दया दिखाता है; और जब श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, तब समस्त सृष्टि सहित मैं भी सन्तुष्ट होता हूँ। इसलिए, उन्होंने निष्कर्ष दिया, मैं यह विष पी जाऊँगा, जिससे समस्त प्राणी शान्ति से जिउँ।

सती की — जो उनकी महिमा जानती थीं — अनुमति माँगकर और पाकर भगवान शिव ने फैलते हलाहल को अपनी हथेली में समेटा और शुद्ध करुणा से उसे पी लिया।

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।

यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्

अर्थ: भगवान शिव पर भी विष ने अपना प्रभाव दिखाया, उनका कण्ठ नीला कर दिया — फिर भी वह चिह्न उस साधु भगवान का आभूषण बन गया। (स्कन्ध 8, अध्याय 7, श्लोक 43)

वे तभी से नीलकण्ठ नाम से पूजित हैं। जैसा श्रीशुकदेव कहते हैं, सज्जन जगत के दुःख से पीड़ित होते हैं, और दूसरों की व्यथा में सहभागी होना ही परम की सर्वोच्च आराधना है। ब्रह्मा, विष्णु और सती सबने उनके कर्म की सराहना की, और हथेली से जो थोड़ा विष चूया उसे बिच्छू, सर्प और अन्य विषैले जीवों ने ग्रहण कर लिया।



कैलास पर्वत पर भगवान शिव अपनी पत्नी सती से कहते हैं कि उन्हें भयभीत प्राणियों की रक्षा करनी है, और उनकी सहमति से करुणावश लोक-विनाशक विष पीने का निश्चय करते हैं (श्लोक 36-42)।

कैलास पर्वत पर भगवान शिव अपनी सहचरी सती से कहते हैं कि उन्हें भयभीत प्राणियों की रक्षा करनी है, और उनकी अनुमति से करुणावश जगत-संकट वाले विष को पी जाने का संकल्प करते हैं (श्लोक 36-42)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अहंकार विनम्र कार्य से इनकार करता है। असुरों ने सर्प की पूँछ पकड़ने से इनकार किया, इसे अपनी मर्यादा से नीचे समझकर। भगवान ने उसे मुस्कुराते हुए पकड़ लिया। सच्ची महानता विनम्र स्थान के लिए कभी अभिमानी नहीं होती (श्लोक 3-4)।
2. भगवान हर प्रयास को दृश्य-अदृश्य रूप से धारण करते हैं। वे कच्छप रूप में पर्वत उठाते हैं, सहस्रबाहु रूप में उसे दबाते हैं, और देवताओं, असुरों तथा सर्प में प्रवेश करके बल देते हैं। हमारा कार्य केवल इसलिए चलता है क्योंकि वे उसे भीतर-बाहर से धारण करते हैं (श्लोक 8-13)।
3. प्रयास का हर फल मधुर नहीं होता। मन्थन का पहला फल घोर विष है। हर महान उद्यम में प्रायः पुरस्कार से पहले कठिनाई और संकट आते हैं (श्लोक 18)।
4. दूसरों का दुःख अपने ऊपर लेना सर्वोच्च आराधना है। शिव विष पीते हैं जिससे सब जिएँ, और श्रीशुकदेव इस व्यथा-सहभागिता को भगवान की सर्वोच्च आराधना कहते हैं। जो करुणा दूसरे की पीड़ा वहन करती है वही सच्ची भक्ति है (श्लोक 39-44)।
5. जो हमें हानि पहुँचाता है वह प्रेम में अर्पित होने पर हमारा गौरव बन सकता है। जिस विष को शिव का नाश करना चाहिए था वह उनका नीलकण्ठ-आभूषण बन गया। दूसरों के हित में स्वीकारा दुःख सौन्दर्य में बदल जाता है (श्लोक 43)।

एक भाक्तेमय चिन्तन

इस अध्याय के हृदय में एक अविस्मरणीय चित्र है: समस्त सृष्टि, देवता और असुर समान रूप से, अमरत्व के अमृत के पीछे जूझते हैं — और जब पहला जो उठता है वह घातक विष है, तब न सबसे बलशाली न सबसे चतुर आगे बढ़ता है, अपितु वह जो दूसरों के लिए दुःख सहने को सबसे अधिक तत्पर है। भगवान शिव विष कुछ पाने के लिए नहीं पीते। उसमें कोई पुरस्कार नहीं, केवल पीड़ा है; वह विष उन्हें भी झुलसाता है। फिर भी वे उसे प्रसन्नता से लेते हैं, क्योंकि विकल्प यह है कि दूसरे कष्ट पाएँ, और यह वे सह नहीं सकते। यहाँ हर स्वार्थ से रहित प्रेम का चित्र है। यह हमारे अपने कष्टों को भी नए ढंग से देखता है। हम अपने से हर विष को दूर रखने में कितनी शक्ति लगाते हैं। शिव एक और मार्ग दिखाते हैं — कि दूसरे के लिए स्वेच्छा से वहन किया दुःख कलंक नहीं अपितु आभूषण है, पराजय नहीं अपितु आराधना का सर्वोच्च रूप है। नीला कण्ठ छिपाने योग्य घाव नहीं; वह उस हृदय का पदक है जिसने इतना प्रेम किया कि वह सह गया जो दूसरे न सह सके।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज एक ऐसा छोटा “विष” खोजें जिसे आप चुपचाप आत्मसात कर सकें जिससे किसी और को न सहना पड़े — एक कटु वचन जिसे आप आगे न बढ़ाएँ, एक असुविधा जिसे आप दूसरे को बचाने के लिए स्वयं लें, एक भार जिसे आप बिना शिकायत उठाएँ। ऐसा करते हुए मन्थन-सागर पर भगवान शिव को स्मरण करें और उस कर्म को “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” के शब्दों से भगवान को अर्पित करें। दूसरे की थोड़ी कठिनाई को अपने हाथों में क्रोध का कारण नहीं, अपितु प्रेम का आभूषण बनने दें।

उपसंहार

आठवें स्कन्ध का सप्तम अध्याय हमें अपनी सबसे बड़ी शिक्षा तक ले आता है: दूसरों के लिए दुःख सहने को तत्पर प्रेम ही भगवान की सर्वोच्च आराधना है, और जो हमें हानि पहुँचाता है वही गौरव में बदल जाता है। भगवान शिव का नीला कण्ठ यह नहीं दिखाता कि विष ने उनके साथ क्या किया — यह दिखाता है कि प्रेम ने विष के साथ क्या किया। अपने ही संघर्षों और भारों की ओर लौटते हुए, हम स्मरण रखें कि भलाई प्रायः इससे मापी जाती है कि हम दूसरे की कठिनाई का कितना भाग अपने ऊपर लेने को तैयार हैं। विष के शान्त होने पर महान मन्थन आगे बढ़ सकता है, और सागर के पास देने को अभी और भी रत्न शेष हैं।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), आठवाँ स्कन्ध, सप्तम अध्याय, पृष्ठ 762–767।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवत विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुरूप प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बद्धता अथवा उसके अनुमोदन का संकेत नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-8-chapter-7-the-churning-begins-and-lord-siva-drinks-the-poison-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

